[2013] 3 एससीआर 90

मोहिंदर सिंह

बनाम

पंजाब राज्य

(आपराधिक अपील संख्या 1278-1279 वर्ष 2010)

28 जनवरी 2013

[माननीय न्यायाधिपति पी. सदाशिवम और फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- एसएस. 366, 432 और 433 ए- दोहरा हत्याकांड- अपीलार्थी-अभियुक्त ने उसकी पत्नी और पुत्री के बीच शत्रुतापूर्ण संबंधों की पृष्ठभूमि में उनकी पत्नी द्वारा उनके विरूद्ध दर्ज आपराधिक मामलों के कारण उनकी हत्या की। उक्त पुत्री के साथ बलात्कार, जिसके लिए उसे 12 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी और पैरोल पर रिहा होने के बाद उस पर हमला करने के लिए उसके विरूद्ध एफआईआर दर्ज की गई थी- अपीलार्थी ने एक घातक हथियार यानी

'कुल्हाडी' के साथ अपराध किया था- विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को आईपीसी की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया और उसे मौत की सजा सुनाई- उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि की पुष्टि की और मौत की सजा की पुष्टि की- तथ्यों और परिस्थितियों में मामला 'दुर्लभ से दुर्लभतम मामले' की श्रेणी में नहीं आता है, हालांकि इसमें कड़ी सजा की मांग की गई थी- अपीलार्थी उसकी पत्नी और बच्चों के रवैये के कारण निराश महसूस कर रहा था- यह प्रतिशोध की प्यास थी, जो इस मामले में प्रेरक कारक बन गई- अपीलार्थी इतना खतरनाक व्यक्ति नहीं है कि उसकी जान बख्शने से समुदाय खतरे में पड़ जाएगा- उसने अपनी दूसरी पुत्री यानी पीडब्लू-2 को नुकसान नहीं पहुंचाया जबकि उसके पास इसके लिए अच्छा अवसर था- इसके अलावा अपीलार्थी के पुनर्वास और सुधार की संभावना कम नहीं हुई- इसलिए उसकी सज़ा को मृत्युदंड से बदलकर जीवन के अंत तक आजीवन कारावास में बदल दिया गया- अपीलार्थी को आजीवन कठोर कारावास से गुजरना होगा जिसका अर्थ है कि उसके जीवन के अंत तक, हालांकि धारा 432 में निर्धारित शर्तों को पूरा करने वाली उपयुक्त सरकार द्वारा दी गई छूट के अधीन है और धारा 433A दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आधारभूत जांच कर उचित आदेश के अधीन है।

अभियोजन पक्ष के अनुसार, अपीलार्थी-अभियुक्त ने उसकी पत्नी और पुत्री-'जी' की हत्या उन दोनों के बीच शत्रुतापूर्ण संबंधों की पृष्ठभूमि में की,

क्योंकि उसकी पत्नी ने 'जी' पर बलात्कार करने के लिए उसके विरूद्ध आपराधिक मामले दर्ज कराए थे जिसके लिए उसको 12 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी और पैरोल पर रिहा होने के बाद उस पर हमला करने के लिए उसके विरूद्ध एफआईआर दर्ज की गई थी। अपीलार्थी उक्त अपराध को अंजाम देने के लिए एक घातक हथियार यानी 'कुलहारा' (कुल्हाड़ी) लेकर घटना स्थल में दाखिल हुआ था जिसका इस्तेमाल दोनों हत्याओं में किया गया था। अपीलार्थी ने अपनी सबसे छोटी पुत्री (पीडब्लू-2) की उपस्थिति में अपराध किया। विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को धारा 302 भारतीय दंड संहिता के तहत दोषी ठहराया और मौत की सजा सुनाई। आक्षेपित निर्णय द्वारा उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी की अपील को खारिज कर दिया और विचारण न्यायालय द्वारा उसे दी गई मौत की सजा की पुष्टि की।

अपीलों का निपटारा करते हुए, न्यायाधिपति सदाशिवम [स्वयं और न्यायाधिपति कलीफुल्ला ने अभिनिर्धारित किया:

1. सीआरपीसी की धारा 366(1) के संदर्भ में, जब सत्र न्यायालय मौत की सजा सुनाता है तो कार्यवाही उच्च न्यायालय में प्रस्तुत की जाएगी और जब तक उच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि नहीं की जाती तब तक सजा पर अमल नहीं किया जाएगा। उपरोक्त धारा का दायरा और अनुप्रयोग केवल उन मामलों में है जहां सत्र न्यायालय द्वारा मौत की सजा

सुनाई गई है। सत्र न्यायालय को रेफरेन्स कार्यवाही को उच्च न्यायालय को रेफर करना चाहिए और उच्च न्यायालय केवल रेफरेन्स न्यायालय के रूप में उनसे निपट सकता है। उच्च न्यायालय की यह प्रथा है कि पुष्टि करने के लिए आगे बढ़ने से पहले वह तथ्यों के साथ-साथ मामले की विधि से संतुष्ट हो जाए कि दोषसिद्धि सही है। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय को न्यायाधीश की राय से स्वतंत्र होकर, अभियुक्त के अपराध या निर्दोषता के बारे में अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर आना होगा। मौत की सजा की पुष्टि के संदर्भ में उच्च न्यायालय को सत्र न्यायालय के विचारों से स्वतंत्र होकर संपूर्ण साक्ष्य की जांच करनी चाहिए। मृत्युदंड की पुष्टि करते समय उच्च न्यायालय स्वयं यह विचार करने के लिए बाध्य है कि कौनसी सजा दी जानी चाहिए और इस बिंदु पर विचारण न्यायालय के फैसले से संतुष्ट नहीं होना चाहिए जब तक कि उसे कम करने के लिए कोई कारण न दिखाया जाए। जहां, मौत की सजा पाए किसी अभियुक्त द्वारा दायर अपील के अलावा, उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 366 के तहत मौत की सजा की पुष्टि के लिए रेफरेन्स का निस्तारण करना होता है, उच्च न्यायालय को संदर्भ से निपटते समय इसके सभी पहलुओं पर विचार करना चाहिए और सत्र न्यायाधीश द्वारा व्यक्त विचारों के अलावा रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर एक स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए। मौत की सज़ा की पुष्टि केवल अन्य या किसी मामले के गंभीर तथ्यों और परिस्थितियों पर आधारित नहीं हो सकती। [पैरा 5] [101-जी-एच; 102-ए-ई]

2.1. वर्तमान मामले में, आरोपी-अपीलार्थी ने पहले 1999 में अपनी मृत पुत्री-'जी' के साथ बलात्कार किया था और उस मामले में उसकी मृत पत्नी गवाह थी जिसमें आरोपी को आईपीसी की धारा 376 और 506 के तहत दोषी ठहराया गया और 12 साल के लिए आरआई की सजा सुनाई गई। बाद में यह भी रिकॉर्ड में लिया गया कि उसकी मृत पत्नी ने आरोपी को उसके घर से बाहर भेज दिया था और परिणामस्वरूप उसे आजीविका का कोई साधन नहीं होने के कारण किराए के घर में अलग रहना पड़ा। यह प्रतिशोध की प्यास थी जो इस मामले में प्रेरक कारक बनी। अभियुक्त का मामला मृत्युदंड देने के लिए "दुर्लभ से दुर्लभतम" मामले की श्रेणी में नहीं आता है। [पैरा 15] [106-जी-एच;107-ए-बी]

2.2. "दुर्लभ से दुर्लभतम" का सिद्धांत दो पहलुओं को सीमित करता है और जब दोनों पहलू संतुष्ट हो जाते हैं तभी मौत की सजा दी जा सकती है। सबसे पहले मामला स्पष्ट रूप से "दुर्लभ से दुर्लभतम" के दायरे में आना चाहिए और दूसरा, जब वैकल्पिक विकल्प निर्विवाद रूप से बंद हो। बचन सिंह मामले में अंतिम उपाय के रूप में मौत की सजा का चयन करने का सुझाव दिया गया जब आजीवन कारावास की वैकल्पिक सजा निरर्थक होगी और कोई उद्देश्य पूरा नहीं करेगी। [पैरा 16] [107-सी-डी]

2.3. आजीवन कारावास की सजा में अलग-अलग डिग्री में निरोध, पुनर्वास और प्रतिशोध प्राप्त करने की संभावना है। लेकिन यह बात मृत्युदंड

के लिए सच नहीं है। यह दोषी व्यक्ति के पुनर्वास और सुधार की क्षमता को पूरी तरह से अस्वीकार करने में अद्वितीय है। यह जीवन को समाप्त कर देता है और इस प्रकार अस्तित्व को समाप्त कर देता है इसलिए जीवन से जुड़ी किसी भी चीज़ को ख़त्म कर देता है। दो सज़ाओं के बीच यही बड़ा अंतर है। अतः मृत्युदंड देने से पहले इस पर विचार करना आवश्यक है। [पैरा 17] [107-ई-एफ]

2.4. "दुर्लभ से दुर्लभतम" सूक्ति मृत्युदंड और आजीवन कारावास की वैकल्पिक सजा के बीच इस अंतर की ओर संकेत करती है। आजीवन कारावास को पूर्णतया निरर्थक तभी कहा जा सकता है जब सजा सुनाए जाने के समय सुधार का लक्ष्य अप्राप्य हो। इसलिए"दुर्लभ से दुर्लभतम" सिद्धांत के दूसरे पहलू को संतुष्ट करने के लिए अदालत को इस बात का स्पष्ट साक्ष्य देना होगा कि दोषी किसी भी प्रकार की सुधारात्मक और पुनर्वास योजना के लिए उपयुक्त क्यों नहीं है। [पैरा 181 [107-जी-एच; 108-ए]

2.5. तात्कालिक मामले को बचन सिंह, मच्छी सिंह और अन्य निर्णयों में दिए गए दिशानिर्देश की कसौटी पर कसने और रिकॉर्ड पर साक्ष्य से उभरने वाली गंभीर और शमनकारी परिस्थितियों को संतुलित करते हुए, तत्काल मामले के लिए उचित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि यह "दुर्लभ से दुर्लभतम" मामला है जिसमें मृत्युदंड की आवश्यकता

है। यह भी मानना मुश्किल है कि अपीलार्थी इतना खतरनाक व्यक्ति है कि उसकी जान बख्शने से समुदाय खतरे में पड़ जाएगा। यह भी नहीं कहा जा सकता कि अभियुक्त के पक्ष में कम करने वाली परिस्थितियों को अधिकतम महत्व देने के बाद भी मौत की सजा देने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है। यह मामला ऐसा है जिसमें सज़ा देने के मामले में मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। (पैरा 191 [108-बी-डी]

2.6. यह सुस्थापित कानून है कि आजीवन कारावास की सज़ा देना एक नियम है और मृत्यु एक अपवाद है। आजीवन कारावास 14 साल या 20 साल या 30 साल की कैद के बराबर नहीं हो सकता बल्कि इसका मतलब हमेशा संपूर्ण प्राकृतिक जीवन होता है। इस न्यायालय ने हमेशा स्पष्ट किया है कि इस प्रकार दी गई कारावास की एक निश्चित अवधि की सज़ा भारत के राष्ट्रपति या राज्य के राज्यपाल, जैसा भी मामला हो, की क्षमादान शक्तियों के प्रयोग में पारित किसी भी आदेश के अधीन होगी। भारत के संविधान के अनुच्छेद 72 या अनुच्छेद 161 के तहत क्षमा, राहत और माफ़ी विशेषाधिकार शक्ति के प्रयोग में प्रदान किए गए हैं। ऐसे आदेशों की न्यायिक समीक्षा की कोई गुंजाइश नहीं है, सिवाय बहुत सीमित आधारों के, जैसे कि आदेश पारित करते समय दिमाग का उपयोग न करना, प्रासंगिक सामग्री पर विचार न करना या यदि आदेश मनमानेपन से ग्रस्त हो। क्षमादान देने और सजा कम करने की शक्ति को संहिता के कई

प्रावधानों में लगाए गए प्रतिबंधों के संदर्भ में निष्पक्षता से उचित रूप से प्रयोग करने के कर्तव्य के साथ जोड़ा गया है। आजीवन कारावास की सजा काट रहे एक दोषी से उसके जीवन के अंत तक हिरासत में रहने की उम्मीद की जाती है जो कि संहिता की धारा 432 के तहत उपयुक्त सरकार द्वारा दी गई किसी भी छूट के अधीन है जो उक्त प्रावधान में उल्लिखित प्रक्रियात्मक जांच के संहिता की धारा 433-ए में जांच के अधीन है। [पारस 20, 21 और 22] [108-ई-एच; 109-ए-सी-एच; 110-ए-बी]

2.7. इस मामले में एक महत्वपूर्ण कारक जिसे हमें नहीं भूलना चाहिए कि उसने अपनी दूसरी पुत्री यानी पीडब्लू-2 को नुकसान नहीं पहुंचाया जबकि उसके पास इसके लिए अच्छा अवसर था। इसके अलावा इस बात पर प्रकाश डाला गया कि वह एक गरीब आदमी था और अपनी आजीविका कमाने में असमर्थ था क्योंकि उसकी मृत पत्नी ने उसे घर से निकाल दिया था। उसका यह भी दावा है कि अगर उसे घर में रहने की अनुमति दी जाती तो वह आसानी से अपने लक्ष्य और साधन दोनों को पूरा कर सकता था क्योंकि जो पैसा वह किराया देकर खर्च कर रहा था वह बच जाता। उसकी आगे की व्यथा यह है कि उसकी मृत पत्नी इस बात पर अड़ी थी कि उसे बाहर रहना चाहिए और सुखी वैवाहिक जीवन नहीं जीना चाहिए और यही कारण था कि उनके रिश्ते तनावपूर्ण थे। इससे यह भी पता चलता है कि आरोपी उसकी पत्नी और बच्चों के रवैये से हताश था।

इसके अलावा अपराधी के पुनर्वास और सुधार की संभावना इस मामले में बंद नहीं हुई है। इसी तरह आरोपी की बहन की ओर से दाखिल हलफनामे से पता चलता है कि उसके परिवार ने अभी पूरी तरह से उसका त्याग नहीं किया है। अतः वर्तमान अपीलार्थी में सुधार की संभावना है। उपरोक्त कारणों से यह ऐसा मामला नहीं है जहां मौत की सजा दी जानी चाहिए। इसलिए अपीलार्थी-अभियुक्त को मृत्युदंड दिए जाने के बजाय आजीवन कठोर कारावास की सजा दी जाती है जिसका अर्थ है कि उसके जीवन के अंत तक, हालांकि धारा 432 में निर्धारित शर्तों को पूरा करने वाली उपयुक्त सरकार द्वारा दी गई छूट के अधीन है और धारा 433A दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आधारभूत जांच कर उचित आदेश के अधीन है। [पैरा 23,24] [110-बी-जी; 111-ए-बी]

बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य **(1980) 2 एससीसी 684** और मच्छी सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य **(1983) 3 एससीसी 470: 1983 (3) एससीआर 413- पर निर्भर।**

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम संजय कुमार **(2012) 8 एससीसी 537**; संगीत और अन्य बनाम हरियाणा राज्य **2012 (11) स्केल 140** और पंछी एवं अन्य बनाम यूपी राज्य **(1998) 7 एससीसी 177: 1998 (1) पूरक एससीआर 40- संदर्भित।**

केस लॉं संदर्भित

1998 (1) पूरक एससीआर, 40 संदर्भित, पैरा 11

(1980) 2 एससीसी 684, भरोसा किया, पैरा 12

(1983) (3) एससीआर 413, भरोसा किया, पैरा 13

(2012) 8 एससीसी 537, संदर्भित, पैरा 21

2012 (11) स्केल 140, संदर्भित, पैरा 22

न्यायाधिपति कलीफुल्ला [पूरक]

1.1. यदि अपीलार्थी के आचरण का उसके द्वारा किए गए पिछले अपराधों के आधार पर विश्लेषण किया जाए तो यह पाया जाता है कि वर्ष 1999 में जैसा कि अपीलार्थी ने नीचे की अदालतों द्वारा पाया था, अपनी मृत पुत्री 'जी' के साथ बलात्कार किया था जब वह नाबालिग थी। दुर्भाग्यवश दूसरी मृतक (अर्थात) उसकी पत्नी इस पाश्विक कृत्य की चश्मदीद गवाह थी। उक्त अपराध को अंजाम देने में अपीलार्थी का आचरण न केवल सर्वोच्च स्तर की अनैतिकता की सीमा पर था बल्कि किसी के लिए भी ऐसे आचरण को हल्के में यह कहकर खारिज करना बेहद मुश्किल होगा कि या तो यह क्रोध या आवेश में किया गया था। जब पिता ही इस तरह के क्रूर अपराध को अंजाम देने वाला हमलावर हो तो कोई भी उस दयनीय स्थिति की कल्पना कर सकता है जिसमें लड़की को रखा गया होगा और वह भी तब जब उसकी अपनी मां की उपस्थिति में ऐसा

शर्मनाक कृत्य किया गया हो। जब पुत्री और मां अपीलार्थी को बलात्कार के उक्त अपराध के लिए दोषी ठहराकर अपनी शिकायतों का निवारण करने में सक्षम थीं तो सामान्य तौर पर अपीलार्थी से पश्चाताप का आचरण प्रदर्शित करने की उम्मीद की जाती थी। दुर्भाग्यवश अपीलार्थी का आचरण तब प्रदिर्शित हुआ जब वह पैरोल पर था। उसने असहाय पीड़ितों पर हमला करके कहीं अधिक प्रतिशोधपूर्ण तरीके से पीड़ितों से संपर्क किया जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 2005 में एक बार एफआईआर दर्ज की गई और उसके बाद जब वह वर्ष 2006 में पैरोल पर था। ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी की राक्षसी मानसिकता केवल पीड़ितों पर हमला करने से कम नहीं हुई है। अंततः उसने अपनी पुत्री और पत्नी को इतने वीभत्स तरीके से खत्म करके अपने चरम अमानवीय व्यवहार को प्रदर्शित किया जिसमें उसने मृतक के शरीर के महत्वपूर्ण हिस्सों पर चोटें पहुंचाकर हत्या को अंजाम दिया और यह भी सुनिश्चित किया कि उनकी तत्तकाल मृत्यु कारित हो। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में वर्णित चोटों की प्रकृति स्वयं ही बताती है कि अपीलार्थी ने किस प्रतिशोध के साथ असहाय पीड़ितों पर हमला किया। वह अपनी छोटी पुत्री (अर्थात्) पीडब्लू-2 को भी बख्शने के लिए तैयार नहीं था जो हालांकि एक कमरे के अंदर खुद को बंद करके अपीलार्थी के क्रोध से बच गई, जब उसने उस वीभत्स तरीके को देखा जिसमें अपीलार्थी ने उसकी पत्नी की जान ले ली थी। [पैरा 9] [116-एफ-एच; 117-ए-एच]

1.2. हालाँकि, मामला अभी भी 'दुर्लभतम मामले' की श्रेणी में रखा गया है, यद्यपि इसमें कड़ी सजा का प्रावधान है। इसलिए सजा को मृत्युदंड से संशोधित करके उसके जीवन के अंत तक आजीवन कारावास में बदल दिया जाता है। अपीलार्थी को आजीवन कठोर कारावास से दंडित किया जाना चाहिए, जिसका अर्थ है कि उसके जीवन के अंत तक कारावास। हालांकि धारा 432 में निर्धारित शर्तों को पूरा करने वाली उपयुक्त सरकार द्वारा दी गई छूट के अधीन है और धारा 433A दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आधारभूत जांच कर उचित आदेश के अधीन है। [पैरा 10, 11] [118-बी-सी, एफ-जी]

बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1980) 2 **एससीसी** 684; मच्छी सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य (1983) 3 **एससीसी** 470: 1983 (3) **एससीआर** 413; स्वामी श्रद्धानंद @मुरली मनोहर मिश्रा बनाम कर्नाटक राज्य (2008) 13 **एससीसी** 767: 2008 (11) **एससीआर** 93; संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2009) 6 **एससीसी** 498: 2009 (9) **एससीआर** 90; मो. फारूक अब्दुल गफूर और अन्य महाराष्ट्र राज्य (2010) 14 **एससीसी** 641: 2009 (12) **एससीआर** 1093; हरेश मोहनदास राजपूत बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 12 **एससीसी** 56: 2011 (14) **एससीआर** 921; महाराष्ट्र राज्य बनाम गोरक्ष अम्बाजी अडसुल **एआईआर** 2011 **एससी** 2689: 2011 (9) **एससीआर** 41; मोहम्मद अजमल

मोहम्मदामीर कसाब @ अबू मुजाहिद बनाम महाराष्ट्र राज्य **जेटी 2012 (8) एससी 4**; गोपाल विनायक गोडसे बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य **एआईआर 1961 एससी सी 600: 1961 एससीआर 440** और मो. मुन्ना बनाम भारत संघ और अन्य **(2005) 7 एससीसी 417: 2005 (3) पूरक एससीआर 233- पर निर्भर।**

रवि @ राम चंद्र बनाम. राजस्थान राज्य **(1996) 2 एससीसी 175: 1995 (6) पूरक एससीआर 195**; शिवाजी @ दद्या शंकर अल्हाट बनाम महाराष्ट्र राज्य **(2008) 15 एससीसी 269: 2008 (13) एससीआर 81**; मोहन अन्ना चव्हाण बनाम महाराष्ट्र राज्य **(2008) 7 एससीसी 561: 2008 (8) एससीआर 1072**; बंटू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **(2008) 11 एससीसी 113: 2008 (11) एससीआर 184**; सुरजा राम बनाम राजस्थान राज्य **(1996) 6 एससीसी 271: 1996 (6) पूरक एससीआर 783**; दयानिधि बिसोई बनाम उड़ीसा राज्य **(2003) 9 एससीसी 310** और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सत्तन @ सत्येन्द्र एवं अन्य **(2009) 4 एससीसी 736: 2009 (3) एससीआर 643- संदर्भित।**

केस लॉं संदर्भित

(1980) 2 एससीसी 684	**भरोसा किया**	**पैरा 5**
1983 (3) एससीआर 413	**भरोसा किया**	**पैरा 5**

2008 (11) एससीआर 93 भरोसा किया पैरा 8

2009 (9) एससीआर 90 भरोसा किया पैरा 8

2009 (12) एससीआर 1093 भरोसा किया पैरा 8

2011 (14) एससीआर 921 भरोसा किया पैरा 8

2011 (9) एससीआर 41 भरोसा किया पैरा 8

2012 (8) एससी 4 भरोसा किया पैरा 8

1995 (6) पूरक एससीआर 195 संदर्भित पैरा 8

2008 (13) एससीआर 81 संदर्भित पैरा 8

2008 (8) एससीआर 1072 संदर्भित पैरा 8

2008(11) एससीआर 184 संदर्भित पैरा 8

1996 (6) पूरक एससीआर 783 संदर्भित पैरा 8

(2003) 9 एससीसी 310 संदर्भित

पैरा 8

2009 (3) एससीआर 643 संदर्भित पैरा 8

1961 एससीआर 440 भरोसा किया पैरा

10

2005 (3) पूरक एससीआर 233 भरोसा किया पैरा 11

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या- 1278 -1279/2010

उच्च न्यायालय पंजाब व हरयाणा, चंडीगढ के मडर्र रेफरेंश संख्या- 08/2007 तथा आपराधिक अपील संख्या- 1033-डीबी वर्ष 2007 में आदेश और निर्णय दिनाकित 30-05-2008 से।

न्यायाधिपति श्री पी. सदाशिवम:- ये अपीलें पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा 2007 की मर्डर रेफरेंस संख्या 8 और आपराधिक अपील संख्या 1033 डीबी में पारित सामान्य अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 30.05.2008 के विरूद्ध दायर की गई हैं जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने मर्डर रेफरेंस को स्वीकार कर सत्र न्यायाधीश, लुधियाना के सेशन केस संख्या 32/2006 में दिनांक 22.11.2007 के आदेश द्वारा अपीलार्थी पर लगाई गई मृत्यु दंड की सजा की पुष्टि की और उसके द्वारा दायर अपील को खारिज किया।

2. **संक्षिप्त तथ्य:**

(ए) अभियोजन पक्ष के अनुसार, 08.01.2006 को, अपीलार्थी-अभियुक्त ने उसकी पत्नी-वीना वर्मा और पुत्री-गीतू वर्मा की हत्या उसकी

पत्नी द्वारा उसके विरूद्ध दर्ज आपराधिक मामलों के कारण उनके मध्य शत्रुतापूर्ण संबंधों की पृष्ठभूमि में कर दी। उसकी पत्नी ने उसके विरूद्ध अपनी अवयस्क पुत्री गीतू वर्मा के साथ बलात्कार करने के लिए मुकदमा दर्ज कराया जिसके लिए उसे 12 वर्ष के कठोर कारावास की सजा से दंडित किया और जनवरी 2005 में पेरोल पर रिहा होने के बाद उस पर हमला करने के लिए उसके विरूद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

(बी) घटना की दिनांक अर्थात 08.01.2006 को शाम लगभग 06:30 बजे, जब अपीलार्थी-अभियुक्त की पुत्री शालू वर्मा-परिवादी अपनी मां-वीना वर्मा और बहन-गीतू वर्मा के साथ अपने प्रतापसिंहवाला हैबोवाल, लुधियाना में स्थित घर में मौजूद थी, उस समय अपीलार्थी-अभियुक्त, जो किराए के मकान में अलग से निवासरत था, वह उक्त स्थान पर हाथ में कुल्हाड़ी लेकर आया। परिवा िदया ने इस आशय की जानकारी अपनी मां को दी। जब वीना वर्मा अपने घर की लॉबी में आई तो अपीलार्थी-अभियुक्त ने उसके सिर पर कुल्हाड़ी से वार कर दिया। वह जमीन पर गिर गई और इसके बाद उसने उसकी गर्दन और हाथ पर कुल्हाड़ी से दो वार और किए। इसके तुरंत बाद वह गीतू वर्मा की ओर बढ़ा और उसके सिर पर लगातार 3 वार किए। दोनों खून से लथपथ हो गए और मौके पर ही उनकी मौत हो गई। जब वह शालू के पास पहुंचा तो वह कमरे में चली गई और अंदर से

कुंदी लगा ली। अपीलार्थी-अभियुक्त कुल्हाड़ी मौके पर छोड़कर भाग गया। कुछ देर बाद वह कमरे के बाहर आई और शोर मचा दिया।

(सी) शालू (पीडब्लू-2) के कथनों के आधार पर, अपीलार्थी-अभियुक्त के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) संख्या 6 पुलिस थाना हैबोवाल, लुधियाना में दर्ज की गई। उसी दिन अपीलार्थी-अभियुक्त को उसके किराए के घर से गिरफ्तार कर लिया गया और मामला सत्र न्यायालय, लुधियाना को सौंप दिया गया और इसे 2006 के सत्र मामले संख्या 32 के रूप में क्रमांकित किया गया।

(डी) सत्र न्यायाधीश, लुधियाना ने दिनांक 22.11.2007 के आदेश द्वारा अपीलार्थी को आईपीसी की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया और उसे मौत की सजा सुनाई।

(ई) उक्त आदेश के विरूद्ध अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की और राज्य ने मौत की सजा की पुष्टि के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 366 के तहत एक संदर्भ दायर किया। दिनांक 30.05.2008 के एक सामान्य आक्षेपित आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने हत्या के संदर्भ को स्वीकार करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा लगाए गए मृत्यु संदर्भ की पुष्टि की और अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया।

(एफ) उक्त निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति के माध्यम से ये अपीलें दायर कीं।

(जी) इस न्यायालय ने दिनांक 20.07.2009 के आदेश द्वारा, केवल सजा तक सीमित रखने वाली विशेष अनुमति याचिकाओं पर नोटिस जारी किया। 16.07.2010 को भी जब इस न्यायालय ने अनुमित प्रदान की तब भी प्रारंभिक नोटिस के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया। इस प्रकार इन अपीलों में अपीलार्थी को दी गई सजा की मात्रा ही विचारणीय बिंदू है जिन पर विचार किया जाना है।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री त्रिपुरारी राज और प्रत्यर्थी-राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री वी. मधुकर को सुना।

4. हालांकि प्रारंभ में विद्वान अधिवक्ता अपीलार्थी ने अभियोजन पक्ष द्वारा आश्रित (rely) किए और नीचे के न्यायालयों द्वारा स्वीकार की परिस्थितियों के साथ प्रकरण के संपूर्ण गुणावगुण को दृष्टिगत करने का निवेदन किया, लेकिन इस न्यायालय द्वारा केवल सजा की मात्रा के लिए ही नोटिस जारी किये जाने के तथ्य के आधार पर उसकी यह प्रार्थना खारिज की।

5. हम इस तथ्य से अवगत हैं कि संहिता की धारा 366(1) के संदर्भ में जब सत्र न्यायालय मृत्यु दंड की सजा पारित करता है तो

कार्यवाही उच्च न्यायालय में प्रस्तुत की जाती है और सजा तब तक निष्पादित नहीं की जाएगी जब तक उच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि ना कर दी जावे। इस धारा की सीमा और अनुप्रयोग केवल उन प्रकरणों में हैं जहां सत्र न्यायालय द्वारा मृत्यु दंड की सजा पारित की गई है। सत्र न्यायालय को कार्यवाही को उच्च न्यायालय को संदर्भित करना चाहिए और उच्च न्यायालय केवल रेफरेंस न्यायालय के रूप में उनसे निपट सकता है। उच्च न्यायालय की यह परंपरा है कि सजा की पुष्टि के लिए आगे बढ़ने से पहले वह तथ्यों के साथ-साथ मामले के कानून से भी संतुष्ट हो जाता है कि दोषसिद्धि सही है। दूसरे शब्दों में, तथ्यों के साथ-साथ उस मामले की विधि दृष्टि से अभियुक्त के दोषी या निर्दोषता के बारे में उच्च न्यायालय को न्यायाधीश की राय से स्वतंत्र होकर अपने स्वयं के स्वतंत्र निष्कर्ष पर आना होगा। मौत की सज़ा की पुष्टि के संदर्भ में, उच्च न्यायालय को सत्र न्यायालय के विचारों से स्वतंत्र होकर पूरे साक्ष्य की जांच करनी चाहिए। मृत्युदंड की पुष्टि करते समय, उच्च न्यायालय स्वयं यह विचार करने के लिए बाध्य है कि कौन सी सजा दी जानी चाहिए और इस बिंदु पर विचारण न्यायालय के फैसले से संतुष्ट नहीं होना चाहिए जब तक कि इसे कम करने के लिए कोई कारण न दिखाया जाए। जहां, मौत की सजा पाए किसी आरोपी द्वारा दायर अपील के अलावा उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 366 के तहत मौत की सजा की पुष्टि के लिए संदर्भ का निपटान करना होता है, उच्च न्यायालय को संदर्भ से निपटते समय, इसके सभी

पहलुओं को दृष्टिगत रखते हुए कार्यवाही पर विचार करना चाहिए और सत्र न्यायालय के द्वारा व्यक्त मत के अलावा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर आना चाहिए। मौत की सज़ा की पुष्टि केवल उदाहरणों या किसी अन्य मामले के गंभीर तथ्यों और परिस्थितियों पर आधारित नहीं हो सकती।

6. उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए विचार न्यायाधीश के समक्ष रखी गई सामग्री के साथ-साथ उच्च न्यायालय के पुष्टिकरण आदेश का विश्लेषण किया जाना आवश्यक है। सीमित नोटिस के मद्देनजर और उच्च न्यायालय द्वारा मौत की सजा की पुष्टि से संबंधित संहिता की धारा 366 में उपबंधित मेंडेट में हम यह मत रखते हैं कि इस न्याालय द्वारा पूर्व में पारित दो आदेशों पर विचार करना आवश्यक है। हम केवल 'दंड की स्वीकार्यता या अन्यथा' के प्रश्न पर केन्द्रित करना आवश्यक समझते हैं।

7. इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह प्रकरण अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा कारित दोहरे हत्याकांड का है जिसने उसकी मृत पत्नी वीना वर्मा व मृत पुत्री गीतू वर्मा द्वारा दर्ज कराये आपराधिक प्रकरणों के कारण परिवार के मध्य शत्रुतापूर्ण सं ंबंधों की पृष्ठभूमि में उसकी पत्नी व पुत्री की वीभत्स तरीके से हत्या कर दी, जिस प्रकरण में उसे अपनी पुत्री गीतू वर्मा के साथ बलात्कार करने के लिए 12 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी। उक्त प्रकरण में उसकी मृत पत्नी साक्षी थी। जनवरी 2005 में पेरोल

पर रिहा होने के बाद उसके द्वारा उसकी पत्नी पर हमला किया गया और रिहाई की शर्तों के उल्लंघन करने के आरोप में भी उसके विरूद्ध रिपोर्ट दर्ज की गई। यह भी जाहिर होता है कि अभियुक्त ने यह अपराध अपनी सबसे छोटी पुत्री शालू (पी.डब्ल्यू-02) की मौजूदगी में किया। यह भी साबित है कि अपीलार्थी घटनास्थल पर इस अपराध को अंजाम देने के लिए घातक हथियार कुल्हाडी लेकर दाखिल हुआ जिसको इस्तेमाल उसने दोनों हत्याओं में किया। घर में उसके परिवार के सदस्य मौजूद थे जिनमें उसकी पत्नी और दो पुत्रियां थीं।

8. विचारण न्यायालय द्वारा मृत्यु दंड की सजा के लिए और उच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि के लिए जो विशेष कारण उल्लेखित किए वे निम्न प्रकार हैं:

i) अपीलार्थी-अभियुक्त ने वर्ष 1999 में अपनी मृत पुत्री गीतू वर्मा के साथ उस समय बलात्कार किया जब वह अवयस्क थी, और उस प्रकरण में उसकी पत्नी वीना वर्मा (मृतका) एक साक्षी थी और उसके विरूद्ध धारा 376, 506 भारतीय दंड संहिता में मुकदमा दर्ज किया गया जिसके परिणाम स्वरूप वह 12 वर्ष के कठोर कारावास की सजा से दंडित किया गया।

ii) जनवरी 2005 में पैरोल पर रहते हुए, अपीलार्थी-अभियुक्त ने रिहाई की शर्तों का उल्लंघन करते हुए, उसकी पत्नी वीना वर्मा पर हमला

किया और उसके विरूद्ध आईपीसी की धारा 323, 324 और 506 के तहत एफआईआर संख्या 58 दिनांक 06.04.2005 दर्ज की गई थी। कथित घटना की तारीख पर जेएमआईसी, लुधियाना की अदालत में लंबित है।

iii) अपीलार्थी-अभियुक्त ने घातक हथियार कुल्हाड़ी के साथ घर में प्रवेश किया और पीड़ितों पर अकारण क्रूर हमले किए।

iv) अपीलार्थी-अभियुक्त ने अपनी सबसे छोटी उम्र की पुत्री की उपस्थिति में उसकी पत्नी और पुत्री के शरीर के महत्वपूर्ण हिस्सों (vital parts) पर कई बार वार किया जिसके परिणामस्वरूप उनकी तत्काल मृत्यु हो गई। जब अभियुक्त् सबसे छोटी पुत्री की ओर बढा तो उसने एक कमरे में भागकर अंदर से कुंदी लगाकर अपनी जान बचाई।

v) अपीलार्थी-अभियुक्त ने उसकी पत्नी- वीना वर्मा को पीछे से उसके सिर पर कुल्हाड़ी से पहला वार किया और जब वह जमीन पर गिर गई तो उसने उसकी गर्दन और सिर पर लगातार वार किए और उसके बाद उसने अपनी पुत्री-गीतू पर हमला किया और उसकी मृत्यु तक बार-बार कुल्हाड़ी से मारा। इसके बाद वह अपनी सबसे छोटी पुत्री शालू (पीडब्लू-2) की ओर बढ़ा और उसे कुल्हाड़ी दिखाई जो एक कमरे में भाग गई और अंदर से कुंदी लगा ली।

vi) मृतक वीना वर्मा के मामले में 4 कटे हुए घाव में से चोट संख्या- 1 व 2 की चोट सिर पर, चोट संख्या-3 गर्दन पर और चोट संख्या-4 बायीं तर्जनी उंगली 1/3 भाग कटी हुई पाई। मृतक गीतू वर्मा के संबंध में जिसके साथ पूर्व में अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा वर्ष 1999 में उसके अवयस्कता के दौरान बलात्कार का अपराध किया गया उसके 9 चोटें कारित की गई जिनमें से 7 कटे हुए घावों में 3 सिर के क्षेत्र में, 1 बांयी मस्टाॅयड पर और शेष 3 बांयी व दांयी कोहनी और उंगिलयों पर लगी थीं। दोनों ही मामलों में पीडितों की तत्काल मृत्यु हो गई।

vii) अपनी दोषसिद्धि और सजा का बदला लेने के अलावा अपीलार्थी-अभियुक्त ने व्यक्तिगत लाभ के लिए अपराध किया है क्योंकि वह चाहता था कि उसकी मृत पत्नी और बच्चों के कब्जे वाले घर को उसके व्यक्तिगत उपयोग के लिए खाली कराया जाए।

9. उसकी पत्नी और पुत्री की वीभत्स और शैतानी तरीके से दोहरी हत्या का अपराध निर्विवाद रूप से गंभीर परिस्थिति के रूप में माना जाएगा। हालाँकि, कुछ कारणों सेउच्च न्यायालय को उत्तेजना बनाम शमन के बीच संतुलन बनाने के उद्देश्य से अभियुक्त के पक्ष में कोई शमनकारी परिस्थिति नहीं मिली। यहां तक कि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश के पृष्ठ 38 पर निम्नानुसार दर्ज किया: -

"...इस पृष्ठभूमि में मजबूत शमनकारी परिस्थितियों की ओर देखने पर कोई परिणाम प्राप्त नहीं हो सकता और यह अपराध वास्तव में हत्या का साधारण मामला नहीं रह गया है। इसने "दुर्लभ से दुर्लभतम" मामले की श्रेणी में पहुंचने की सीमा तक गंभीरता प्राप्त कर ली है।"

यह उल्लेख करना उचित है कि रेफरेन्स न्यायालय को गंभीर और शमनकारी परिस्थितियों में संतुलन बनाये रखने के दायित्व के बावजूद उच्च न्यायालय ने उससे परहेज किया।

10. दूसरी ओर सत्र न्यायालय ने गंभीर और शमनकारी परिस्थितियों में संतुलन बनाने का प्रयास दो शमनकारी परिस्थितियों के कथन निम्न कथन द्वारा कियाः

1. सबसे पहले, अपराध करने के समय उसकी उम्र अर्थात 41 साल।

2. दूसरी बात यह कि आरोपी एक गरीब आदमी है जिसके पास कोई आजीविका नहीं थी।

हालांकि यह सच है कि उपरोक्त दोनों परिस्थितियां अकेले मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदलने के लिए उपयुक्त नहीं होंगी, तथापि इससे पहले कि हम इस मामले में अन्य कम करने वाली परिस्थितियों की गणना करने के लिए आगे बढ़ें, कुछ न्यायिक दृष्टांत पर विचार करना

आवश्यक है जिनके द्वारा यह अभिनिधार्रित किया गया है कि कोई प्रकरण दुर्लभ से दुलर्भतम की श्रेणी में आता है अथवा नहीं उसका एकमात्र मापदंड क्रूरता/नृशंसता नहीं है।

11. पंछी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1998) 7 एससीसी 177, में इस न्यायालय ने माना कि क्रूरता यह निर्धारित करने का एकमात्र मानदंड नहीं है कि कोई मामला "दुर्लभ से दुर्लभतम" श्रेणी में आता है या नहीं, जिससे मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदलना उचित हो जाता है। इस न्यायालय ने कहा:

> “इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस मामले में विशेषकर बूढे और कम उम्र के बच्चे की हत्याओं में क्रूरता बड़ी है। ऐसा हो सकता है कि जिस तरह से हत्या की गई वह एक आधार हो सकता है लेकिन यह निर्णय करने का एकमात्र मानदंड नहीं है कि मामला "दुर्लभ से दुर्लभतम " मामलों में से एक है जैसा कि बचन सिंह के मामले में संकेत दिया गया है।"

12. इस न्यायालय की संविधान पीठ ने बहुमत से बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य मामले में मौत की सजा की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा। (1980) 2 एससीसी 684। इस न्यायालय ने यह कहने में विशेष सावधानी बरती कि आम तौर पर हत्या के अपराध के लिए मौत की सजा

नहीं दी जाएगी और वैकल्पिक विकल्प बंद होने पर इसे "दुर्लभ से दुर्लभतम" मामलों तक ही सीमित रखा जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, वे प्रकरण जिनमें कम सजा पूर्णतः अपर्याप्त हो उस परिस्थिति के अलावा अन्य मामलों में मृत्युदंड की सजा को संविधान पीठ ने वैध नहीं पाया।

13. मच्छी सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, (1983) 3 एससीसी 470 में, इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने बचन सिंह (सुप्रा) में अनुपात का पालन करते हुए कुछ दिशानिर्देश दिए, जिनमें से वर्तमान मामले में निम्नलिखित प्रासंगिक हैं:

> "गंभीर और शमनकारी परिस्थितियों की एक बैलेंसशीट तैयार करनी होगी और ऐसा करने में कम करने वाली परिस्थितियों को पूरा महत्व देना होगा और विकल्प का प्रयोग करने से पहले गंभीर और कम करने वाली परिस्थितियों के बीच एक उचित संतुलन बनाना होगा।"

14. हमने दोनों न्यायालयों के उपरोक्त कारणों को केवल यह ध्यान देने के लिए निकाला है कि एक प्रकार से प्रत्येक हत्या क्रूर/नृशंस है और एक प्रकरण का दूसरे के मध्य हत्या के आसपास की गंभीर और शमनकारी परिस्थितियों के कारण हो सकता है।

15. मौजूदा मामले में जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है आरोपी ने पहले 1999 में अपनी मृत पुत्री गीतू वर्मा के साथ बलात्कार किया था और उस मामले में उसकी मृत पत्नी- वीना वर्मा एक गवाह थी जिसमें आरोपी को धारा 376 और 506 भारतीय दंड संहिता के तहत दोषी ठहराया गया था और 12 साल के लिए कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। बाद में यह भी रिकॉर्ड में लिया गया कि उसकी मृत पत्नी ने आरोपी को उसके घर से बाहर निकाल दिया और परिणामस्वरूप उसे आजीविका के किसी साधन के बिना किराए के घर में अलग रहना पड़ा। यह प्रतिशोध की प्यास थी जो इस मामले में प्रेरक कारक बनी। हम किसी भी शब्द में यह सुझाव नहीं दे रहे हैं कि आरोपी का मकसद सही था बल्कि हमारा मानना है कि यह मौत की सजा देने के लिए "दुर्लभ से दुर्लभतम" मामले की श्रेणी में नहीं आता है।

16. "दुर्लभ से दुर्लभतम" का सिद्धांत दो पहलुओं तक सीमित है और जब दोनों पहलू संतुष्ट हो जाते हैं तभी मौत की सजा दी जा सकती है। सबसे पहले मामला स्पष्ट रूप से "दुर्लभ से दुर्लभतम" के दायरे में आना चाहिए और दूसरा, जब वैकल्पिक विकल्प निर्विवाद रूप से बंद हो। बचन सिंह (सुप्रा) ने सुझाव दिया कि उस परिस्थिति में अंतिम उपाय के रूप में मृत्युदंड की सजा दी जा सकती है जब आजीवन कारावास की वैकल्पिक सजा निरर्थक होगी और कोई उद्देश्य पूरा नहीं करेगी।

17. आजीवन कारावास में विभिन्न स्तरों पर निवारण, पुनर्वास और प्रतिशोध प्राप्त करने की संभावना होती है। लेकिन यह बात मृत्युदंड के लिए सच नहीं है। यह दोषी व्यक्ति के पुनर्वास और सुधार की क्षमता को पूरी तरह से अस्वीकार कर देती है। यह जीवन को समाप्त कर देता है और इस प्रकार अस्तित्व को समाप्त कर देता है, इसलिए जीवन से संबंधित किसी भी चीज़ को समाप्त कर देता है। दो सज़ाओं के बीच यही बड़ा अंतर है। अतः मृत्युदंड देने से पहले इस पर विचार करना अनिवार्य है।

18. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, "दुर्लभ से दुर्लभतम" सूक्ति, मृत्युदंड और आजीवन कारावास की वैकल्पिक सजा के बीच इस अंतर की ओर संकेत करती है। यहां प्रासंगिक प्रश्न यह निर्धारित करना होगा कि क्या सजा के रूप में आजीवन कारावास निरर्थक होगा और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में किसी भी कारण से पूरी तरह से रहित होगा। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, आजीवन कारावास को पूरी तरह से निरर्थक तभी कहा जा सकता है, जबकि सजा द्वारा सुधार का लक्ष्य अप्राप्य हो। इसलिए "दुर्लभ से दुर्लभतम" सिद्धांत के दूसरे पहलू को संतुष्ट करने के लिए अदालत को स्पष्ट सबूत देना होगा कि दोषी किसी भी प्रकार की सुधारात्मक और पुनर्वास योजना के लिए उपयुक्त क्यों नहीं है।

19. बचन सिंह (सुप्रा), मच्छी सिंह (सुप्रा) और अन्य निर्णयों में निर्धारित दिशानिर्देशों की कसौटी पर मामले का निस्तारण करना और

उपलब्ध साक्ष्य से गंभीर और शमनकारी परिस्थितियों को संतुलित करने के आधार पर हम यह स्वीकार करने के लिए सहमत नहीं हैं कि इस मामले को उचित रूप से "दुर्लभ से दुर्लभतम" मामला कहा जा सकता है, जिसमें मौत की सजा दी जा सकती है। हमारे लिए यह मानना भी मुश्किल है कि अपीलार्थी इतना खतरनाक व्यक्ति है कि उसकी जान बख्शने से समुदाय खतरे में पड़ जाएगा। हम इस बात से भी संतुष्ट नहीं हैं कि अपराध की परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि अभियुक्त के पक्ष में शमनकारी परिस्थितियों को अधिकतम महत्व देने के बाद भी मृत्युदंड देने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है। हमारे विचार में यह मामला ऐसा है जिसमें सज़ा देने के मामले में मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए।

20. यह सुस्थापित विधि है कि आजीवन कारावास की सज़ा एक नियम है और मृत्यु एक अपवाद है। "दुर्लभ से दुर्लभतम" मामले के सिद्धांत का अनुप्रयोग प्रत्येक मामले पर निर्भर करता है और भिन्न-भिन्न होता है। हालाँकि, इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में निर्धारित और दोहराए गए सिद्धांतों से पता चलता है कि जानबूझकर योजनाबद्ध अपराध में शैतानी तरीके से सावधानीपूर्वक निष्पादित किया गया, भयानक तरीके से अमानवीय आचरण का प्रदर्शन किया गया, हर किसी की अंतरात्मा को छुआ गया और इस तरह समाज के नैतिक ढ़ांचे को अस्त-व्यस्त किया गया। यह सुनिश्चित करने के लिए मृत्युदंड लगाने की मांग की जाएगी कि

यह एक निवारक के रूप में कार्य करे। हालाँकि हम आश्वस्त हैं कि प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर अभियोजन का मामला अपीलार्थी द्वारा अपराध किए जाने की पुष्टि करता है, तथापि हमारी सुविचारित राय है कि अभी भी यह मामला "दुर्लभ से दुर्लभतम" मुकदमे की श्रेणी में नहीं आता है।

21. आजीवन कारावास 14 साल या 20 साल या 30 साल की कैद के बराबर नहीं हो सकता बल्कि इसका मतलब हमेशा संपूर्ण प्राकृतिक जीवन होता है। इस न्यायालय ने हमेशा स्पष्ट किया है कि दी गई आरोपित कारावास की एक निश्चित अवधि की सजा भारत के राष्ट्रपति या राज्य के राज्यपाल की क्षमादान शक्तियों के प्रयोग में पारित किसी भी आदेश के अधीन होगी। भारत के संविधान के अनुच्छेद 72 या अनुच्छेद 161 के तहत क्षमा, राहत और माफी विशेषाधिकार शक्ति का प्रयोग करके दी जाती है। जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य बनाम संजय कुमार, (2012) 8 एससीसी 537 में किया गया है, ऐसे आदेशों की न्यायिक समीक्षा की कोई गुंजाइश नहीं है सिवाय बहुत सीमित आधारों के, जैसे कि आदेश पारित करते समय दिमाग का उपयोग न करना, प्रासंगिक सामग्री पर विचार न करना, या यदि आदेश मनमानी से ग्रस्त है। क्षमादान देने और सजा कम करने की शक्ति को संहिता के कई प्रावधानों में लगाए गए प्रतिबंधों के संदर्भ में निष्पक्षता से, उचित रूप से प्रयोग करने के कर्तव्य के साथ जोड़ा गया है।

22. सभी मनमानी छूटों को रोकने के लिए संहिता स्वयं कई शर्तें उपबंधित करती है। संहिता की धारा 432 की उपधारा (2) से (5) दोषी या उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा सजा के निलंबन या माफी के लिए उपयुक्त सरकार के समक्ष आवेदन करने की बुनियादी प्रक्रिया बताती है। हमारा विचार है कि संहिता की धारा 432 की उप-धारा (1) के तहत उपयुक्त सरकार द्वारा शक्ति का प्रयोग इस साधारण कारण से स्वत: संज्ञान नहीं लिया जा सकता है कि यह केवल एक सक्षम प्रावधान है और कुछ शर्तों की पूर्ति के अधीन ही यह संभव होगा। उन शर्तों का उल्लेख या तो जेल मैनुअल या वैधानिक नियमों में किया गया है। इस न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों में प्रतिपादित किया है कि छूट की शक्ति का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, छूट देने का निर्णय अच्छी तरह से सूचित, उचित और निष्पक्ष होना चाहिए। संहिता की धारा 432 में निर्धारित वैधानिक प्रक्रिया अपने-आप उपयुक्त सरकार द्वारा शक्ति के संभावित दुरुपयोग पर रोक लगाती है। जैसा कि इस न्यायालय ने संगीत एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य, 2012 (11) स्केल 140 में देखा है कि यह गलत धाराणा है कि उम्रकैद की सजा काट रहा कैदी 14 साल या 20 साल की कैद पूरी होने पर रिहाई का अपरिहार्य अधिकार रखता है। आजीवन कारावास की सजा काट रहे एक दोषी से उसके जीवन के अंत तक हिरासत में रहने की उम्मीद की जाती है जो कि संहिता की धारा 432 के तहत उपयुक्त सरकार द्वारा दी गई किसी भी छूट के अधीन है जो बदले

में उक्त प्रावधान में उल्लिखित प्रक्रियात्मक जांच और आगे संहिता की धारा 433-ए में आधारभूत जांच के अधीन है।

23. इस मामले में एक महत्वपूर्ण कारक जिसे हमें नजरअंदाज नहीं करना चाहिए वह यह है कि उसने अपनी दूसरी पुत्री शालू (पीडब्लू-2) को नुकसान नहीं पहुंचाया भले ही उसके पास इसके लिए अच्छा अवसर था। इसके अलावा इस बात पर प्रकाश डाला गया कि वह एक गरीब आदमी था और अपनी आजीविका कमाने में असमर्थ था क्योंकि उसकी मृत पत्नी ने उसे घर से निकाल दिया था। उसका यह भी दावा है कि अगर उसे घर में रहने की अनुमति दी जाती तो वह आसानी से अपने लक्ष्य और साधन दोनों को पूरा कर सकता था क्योंकि जो पैसा वह किराया देकर खर्च कर रहा था वह बच जाता। उसकी व्यथा यह है कि उसकी मृत पत्नी जिद पर अड़ी थी कि उन्हें बाहर रहना चाहिए और सुखी वैवाहिक जीवन नहीं जीना चाहिए और यही कारण था कि उनके रिश्ते तनावपूर्ण थे। इससे यह भी पता चलता है कि आरोपी उसकी पत्नी और बच्चों के रवैये से हताश था। इसके अलावा इस मामले में अपराधी के पुनर्वास और सुधार की संभावना खत्म नहीं हुई है। इसी तरह आरोपी की बहन की ओर से दाखिल हलफनामे से पता चलता है कि उसके परिवार ने अभी तक पूरी तरह से उसका त्याग नहीं किया है। यह भी स्पष्ट है कि उपरोक्त अपीलों के लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी-अभियुक्त ने अपनी बहन- प्रमजीत कौर के

माध्यम से इस न्यायालय के पूर्व आदेशों दिनांक 20.07.2009 और 16.07.2010 के आदेशों में संशोधन के लिए एक आवेदन दायर करते हुए अपीलों का स्कोप बढ़ाने के और उपलब्ध सभी आधारों को उठाने की अनुमति मांगी गई। इस आवेदन के लिए केवल उसकी बहन- प्रमजीत कौर ने उपरोक्त बिंदुओं को मजबूत करते हुए एक हलफनामा दायर किया है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, उसकी बहन के हलफनामे से पता चलता है कि उसके परिवार ने उसका पूरी तरह से त्याग नहीं किया है। अत: वर्तमान अपीलार्थी में सुधार की संभावना है। इन सभी सामग्रियों को ध्यान में रखते हुए हमें नहीं लगता कि वर्तमान मामले में मृत्युदंड दिए जाने की आवश्यकता है।

24. उपरोक्त कारणों से हमारी राय है कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां मौत की सजा दी जानी चाहिए। इसलिए अपीलार्थी-अभियुक्त को मृत्युदंड दिए जाने के बजाय आजीवन कठोर कारावास की सजा दी जाती है, जिसका अर्थ है उसके जीवन के अंत तक, लेकिन जो धारा 432 में निर्धारित शर्तों को पूरा करने वाली उपयुक्त सरकार द्वारा दी गई किसी भी छूट के अधीन हैऔर धारा 433A दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आधारभूत जांच कर उचित आदेश के अधीन है। अपीलों का निपटारा उपरोक्त शर्तों पर किया जाता है।

न्यायाधिपति श्री फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला

1. मुझे अपने विद्वान भाई न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम के फैसले को पढ़ने का अवसर मिला जिन्होंने मौत की सजा को आजीवन कारावास यानी उसके जीवन के अंत तक संशोधित करते हुए इस मुद्दे पर विस्तार से विचार किया है। मैं केवल महामहिम न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम के फैसले का पूरी तरह से समर्थन और सहमति देते हुए अपने विचारों को पूरक करना चाहता हूं। चूंकि तथ्यों को महामहिम न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम के फैसले में विस्तार से बताया गया है इसलिए मैं इसका विस्तार से उल्लेख नहीं करता हूं। अपने तर्क के उद्देश्य से महामहिम न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम के निष्कर्ष के अनुरूप मैं अपने निष्कर्षों का समर्थन करने के लिए केवल कुछ कारकों का उल्लेख करना चाहता हूं।

2. इन अपीलों पर 20.07.2009 को विचार किया गया, हालाँकि नोटिस जारी करते समय अपीलों को केवल सजा तक ही सीमित रखा गया था। अपीलार्थी को आईपीसी की धारा 302 के तहत अपराध का दोषी पाया गया और 08.01.2006 को प्रतापसिंहवाला, लुधियाना के इलाके में उसकी पत्नी वीना वर्मा और उनकी पुत्री गीतू वर्मा की हत्या के लिए मौत की सजा सुनाई गई। उपरोक्त अपीलें हत्या संदर्भ संख्या 8/2007 में मौत की सजा की पुष्टि के साथ-साथ अपीलार्थी द्वारा दायर 2007 की संबंधित आपराधिक अपील संख्या 1033-डीबी से उत्पन्न हुईं।

3. यह बताना आवश्यक है कि अपीलार्थी 08.01.2006 को उसकी पत्नी और पुत्री की एक के बाद एक हत्या करने के घिनौने अपराध में शामिल हुआ। इस तरह के जघन्य अपराध का मकसद यह था कि उसके और उसकी पत्नी वीना वर्मा के बीच उसके स्वामित्व वाले घर को लेकर विवाद था और वह अपने ही घर में प्रवेश पाने से वंचित था। वास्तव में यह रिकॉर्ड की बात है कि वर्ष 1999 में अपीलार्थी के विरूद्ध एफआईआर संख्या 27 में एक एफआईआर हुई थी जिसमें अपीलार्थी पर अपनी मृत पुत्री गीतू वर्मा के साथ बलात्कार करने के लिए धारा 376 और 506 आईपीसी के तहत अपराध का आरोप लगाया गया था जो दिनांक 15.05.2001 के निर्णय द्वारा 12 वर्ष के कठोर कारावास की सजा के साथ समाप्त हो गया। अपीलार्थी के विरूद्ध आईपीसी की धारा 323 और 506 के तहत हमला करने और उसकी पत्नी वीना वर्मा को धमकी देने के लिए एक और एफआईआर संख्या 58 दिनांक 06.04.2005 थी जो कि Ex.PAA के अनुसार भी साबित हुई थी। धारा 323 और 324 आईपीसी के तहत अपराधों के लिए आपराधिक मामला संख्या 2531 दिनांक 01.08.2005 (2005 की एफआईआर संख्या 58) का एक और रिकॉर्ड था जो जेएमआईसी, लुधियाना की अदालत में लंबित था। वास्तव में उसकी पत्नी और पुत्री की हत्या का वर्तमान अपराध अपीलार्थी द्वारा तब किया गया था जब वह पैरोल पर था और वर्ष 1999 में अपनी पुत्री के साथ बलात्कार के अपराध की सजा के लिए 12 साल के कठोर कारावास की सजा काट रहा

था। यह ध्यान में रखना प्रासंगिक है कि अपीलार्थी को उसकी पत्नी और पुत्री की हत्या के आरोप में दोषी ठहराने के लिए अन्य सबूतों के अलावा उसकी अपनी नाबालिग पुत्री शालू पीडब्लू.2 जो घटना की चश्मदीद गवाह थी की गवाही को उसके अपने बेटे मल्कियत सिंह PW.7 के साक्ष्य के साथ काफी हद तक बहुत महत्व दिया गया।

4. विचारण न्यायालय ने उपरोक्त कारकों को ध्यान में रखते हुए कहा कि अतीत में विभिन्न आपराधिक मामलों में उसकी संलिप्तता के साथ-साथ उसकी उसकी पत्नी और पुत्री की हत्या के अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए जिनके लिए अपीलार्थी को लगा कि वे उसकी अवयस्क पुत्री से बलात्संग के अपराध की सजा के लिए जिम्मेदार हैं, विस्तृत कारण बताते हुए यह दृष्टिकोण अपनाया कि यह मामला मौत की सजा देने के लिए 'दुर्लभ से दुर्लभतम मामलों' के सिद्धांतों के अंतर्गत क्यों आता है और उसे भी वही सजा दी गई।

5. बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1980) 2 एससीसी 684 और उसके बाद का फैसला मच्छी सिंह व अन्य बनाम पंजाब राज्य (1983) 3 एससीसी 470 में इस न्यायालय की प्रसिद्ध संविधान पीठ के निर्णयों में निर्धारित सिद्धांतों को स्थापित करने के बाद उच्च न्यायालय ने माना कि हत्या का संदर्भ स्वीकार किया जाना चाहिए और इसलिए मौत की सजा की पुष्टि की गई। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने उपरोक्त दो निर्णयों के

आधार पर उन परिस्थितियों को ध्यान में रखा जिन्हें 'दुर्लभतम मामले' के सिद्धांत को लागू करने के लिए ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसे निम्नानुसार नोट किया गया:

I. हत्या करने का तरीका।

II. हत्या करने का मकसद।

III. अपराध की असामाजिक या सामाजिक रूप से घृणित प्रकृति।

IV. अपराध की भयावहता।

V. हत्या के शिकार व्यक्ति का व्यक्तित्व।

6. उच्च न्यायालय ने मृतक के शरीर पर पाई गई चोटों को भी नोट किया है, जहां तक यह अपीलार्थी की पत्नी वीना वर्मा से संबंधित है, जिसे चार कटे हुए घाव लगे थे, जिनमें से चोट संख्या 1 दाहिनी तरफ और ऊपरी तरफ थी। गर्दन का हिस्सा और चोट नंबर 2 सिर पर थी, तीसरी गर्दन पर थी और चौथी चोट के परिणामस्वरूप बायीं तर्जनी उंगली के निचले एक तिहाई भाग से साफ कटे किनारों के साथ आंशिक विच्छेदन हुआ। जहां तक मृतक की पुत्री गीतू वर्मा का सवाल है, नौ चोटें थीं, जिनमें से सात कटे हुए घाव थे और दो खरोंचें थीं। सात कटे हुए घावों में से तीन सिर पर ही लगे थे, चौथा बायीं मास्टॉइड पर था और शेष तीन बायीं और दाहिनी कोहनी और उंगलियों पर थे। दोनों पीड़ितों की तत्काल मृत्यु हो

गई। अपीलार्थी की मूल व्यथा कुछ और नहीं बल्कि उसके घर पर कब्ज़ा करने की इच्छा थी, जिस पर किसी और ने नहीं बल्कि उसकी अपनी पत्नी, बेटियों और बेटे ने कब्जा कर लिया था।

7. विशेष कारणों को ध्यान में रखते हुए डिवीजन बेंच ने माना कि अपनी पत्नी और पुत्री की हत्या करने में अपीलार्थी का शत्रुतापूर्ण आचरण इस हद तक बढ़ गया कि मामला पूरी तरह से 'दुर्लभतम मामलों' के सिद्धांत द्वारा शासित था और अंततः यह माना गया कि विचारण न्यायालय द्वारा मौत की सजा देना पूरी तरह से उचित था।

8. इस संदर्भ में हमने बाद के निर्णयों में निर्धारित विभिन्न सिद्धांतों का विश्लेषण किया जिनमें स्वामी श्रद्धानंद @ मुरली मनोहर मिश्रा बनाम कर्नाटक राज्य (2008) 13 एससीसी 767, संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य -(2009) 6 एससीसी 498, मो. फारूक अब्दुल गफूर और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य- (2010) 14 एससीसी 641, हरेश मोहनदास राजपूत बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 12 एससीसी 56, महाराष्ट्र राज्य बनाम गोरक्ष अंबाजी अडसुल- एआईआर 2011 एससी 2689 और हाल ही में आये मोहम्मद अजमल मोहम्मदामीर कसाब उर्फ अबू मुजाहिद बनाम महाराष्ट्र राज्य जेटी 2012 (8) एससी 4 फैसले का विश्लेषण किया। बचन सिंह (सुप्रा) में निर्धारित चार सिद्धांतों के अलावा उपरोक्त

निर्णयों के परिप्रेक्ष्य में भी गंभीर और शमनकारी परिस्थितियों की बैलेंस शीट के लिए निम्नलिखित सिद्धांतों को ध्यान में रखना आवश्यक हैः

(i) किसी मामले के संबंध में 'दुर्लभ से दुर्लभतम' पहलू के निष्कर्ष में अपराध और अपराधी दोनों से संबंधित गंभीर और शमनकारी परिस्थितियों की पहचान शामिल होगी।

(ii) अभिव्यक्ति 'विशेष कारण' का स्पष्ट अर्थ है ('असाधारण कारण') जो अपराध के साथ-साथ अपराधी से संबंधित विशेष मामले की असाधारण गंभीर परिस्थितियों पर आधारित है।

(iii) रावजी @ राम चंद्र बनाम राजस्थान राज्य- (1996) 2 एससीसी 175 का निर्णय जिसका बाद में छह अन्य मामलों में पालन किया गया जो शिवाजी @ दद्या शंकर अल्हाट बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 15 एससीसी 269- मोहन अन्ना चव्हाण बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 7 एससीसी 561, बंटू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2008) 11 एससीसी 113, सुरजा राम बनाम राजस्थान राज्य (1996) 6 एससीसी 271, दयानिधि बिसोई बनाम उड़ीसा राज्य (2003) 9 एससीसी 310, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सत्तन @ सत्येन्द्र एवं अन्य (2009) 4 एससीसी 736 जिनमें यह माना गया था कि यह केवल अपराध से संबंधित विशेषताएं हैं, आपराधी से संबंधित विशेषताओं को छोड़कर जो आपराधिक विचारण में सजा देने के लिए प्रासंगिक हैं। जो संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार

(सुप्रा) 529 में रिपोर्ट किए गए फैसले में बचन सिंह (सुप्रा) के लिए प्रस्तुत किया गया था।

(iv) जनता की राय को 'दुर्लभ से दुर्लभतम' मैट्रिक्स में फिट करना मुश्किल है। अपराध के बारे में लोगों की धारणा न तो अपराध और न ही अपराधी से संबंधित कोई वस्तुनिष्ठ परिस्थिति है। बचन सिंह (सुप्रा) (2009) 6 एससीसी 498 पृष्ठ 53 आदेश के अनुसार, कम से कम मृत्युदंड की सजा में जनता की धारणा दोषिसिद्धि के अतिरिक्त सजा के लिए भी अप्रासंगिक है।

(v) मृत्युदंड की सजा एक एक ऐसा क्षेत्र है जहां सुरक्षा उपाय लगातार संविधान से ताकत लेते हैं।(2009) 6 एससीसी 498 पृष्ठ 539।

(vi) अंतिम समीक्षा प्राधिकारी के रूप में सर्वोच्च न्यायालय को कहीं अधिक गंभीर और गहन कर्तव्य का निर्वहन करना है और न्यायालय को न केवल यह सुनिश्चित करना है कि धारा 302 के तहत मौत की सजा देना 'दुर्लभ से दुर्लभतम' सिद्धांत पर प्रत्यक्ष विचार के बाद विवेक का एक लापरवाहीपूर्ण अभ्यास न बन जाए। लेकिन यह भी कि निर्णय लेने की प्रक्रिया इस संबंध में लागू प्रक्रियात्मक न्याय की विशेष कठोरता से बची रहे। (2010) 14 एससीसी 641 पृष्ठ 692।

(vii) 'दुर्लभ से दुर्लभतम' मामला तब आता है जब कोई दोषी समाज के सामंजस्यपूर्ण और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए खतरा बन जाता है। अपराध जघन्य या क्रूर हो सकता है लेकिन "दुर्लभतम मामले" की श्रेणी में नहीं हो सकता है। यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं होना चाहिए कि आरोपी को सुधारा या पुनर्वासित नहीं किया जा सकता है और उसके हिंसा के आपराधिक कृत्य जारी रखने की संभावना है क्योंकि यह समाज के लिए एक निरंतर खतरा होगा। 2011 (12) एससीसी 56 पृष्ठ 63 पैरा 20 पर।

(viii) आजीवन कारावास नियम है और मृत्युदंड अपवाद है। मृत्युदंड देने के लिए विशेष कारण प्रदान करने की शर्त को भाषाई रूप से नहीं समझा जाना चाहिए, बल्कि यह मृत्युदंड का समर्थन करने और उसे निर्विवाद बनाने वाले तर्क की बुनियादी विशेषताओं को संतुष्ट करना है।

(ix) अपराध करने की परिस्थितियाँ और तरीका ऐसा होना चाहिए कि यह न्यायालय की न्यायिक विवेक को इस हद तक प्रभावित करे कि एकमात्र और अपरिहार्य निष्कर्ष मृत्युदंड देना होना चाहिए। एआईआर 2011 एससी 2689)

(x) जब मामला 'दुर्लभ से दुर्लभतम' की श्रेणी में आता है तो स्पष्ट रूप से मौत की सजा की मांग की जाती है और सजा के मामले में दिखाई गई कोई भी उदारता न केवल गलत होगी बल्कि निश्चित रूप से प्रतिशोध

की निजी भावना को जन्म देगी और बढ़ावा देगी। जो समाज में अस्थिरता को बढावा देती है। (एआईआर 1983 एससी 585)

(xi) मृत्युदंड को संवैधानिक रूप से वैध माना गया है। परीक्षण यह है कि यदि अपीलार्थी का मामला नहीं है तो किस मामले में मृत्युदंड दिया जाएगा। जेटी (2012) 8 एससी 4।

9. उपरोक्त स्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, जब हम मामले की जांच करते हैं तो यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि अपीलार्थी के आचरण का, यदि उसके द्वारा किए गए पिछले अपराधों के आधार पर विश्लेषण किया जाता है, तो हम पाते हैं कि वर्ष 1999 में नीचे की अदालतों द्वारा पाया गया कि अपीलार्थी ने अपनी मृत पुत्री गीतू वर्मा के साथ तब बलात्कार किया जब वह नाबालिग थी और वी उसे मारने&पीटने के बाद। दुर्भाग्यवश, दूसरी मृतक (अर्थात) उसकी पत्नी, इस पाशविक कृत्य की चश्मदीद गवाह थी। ऐसी स्थिति की कल्पना करना समझ में नहीं आता जिसमें पिता ने ही अपनी ही मां की मौजूदगी में अपनी ही नाबालिग पुत्री के साथ दुष्कर्म किया हो। उक्त अपराध को अंजाम देने में अपीलार्थी का आचरण न केवल सर्वोच्च स्तर की अनैतिकता की सीमा पर था बल्कि किसी के लिए भी ऐसे आचरण को हल्के में यह कहकर खारिज करना बेहद मुश्किल होगा कि यह या तो क्रोध या आवेश में या ऐसी ही अन्य स्थिति में किया गया था। यदि बलात्कार का ऐसा वीभत्स अपराध स्वयं

पिता के अलावा किसी और ने किया होता, तो पीड़िता को अपने पिता या माँ से सांत्वना के लिए रोने का पूरा अवसर मिलता। इस संदर्भ में हमें केवल तमिल-कहावत याद आती है जिसका अंग्रेजी में अर्थ है "जब बाड़ फसल को खा जाती है"। जब पिता ही इस तरह के क्रूर अपराध को अंजाम देने वाला हमलावर हो तो कोई भी उस दयनीय स्थिति की कल्पना कर सकता है जिसमें लड़की को रखा गया होगा और वह भी तब जब उसकी अपनी मां की उपस्थिति में ऐसा शर्मनाक कृत्य किया गया हो। जब पुत्री और मां अपीलार्थी को बलात्कार के उक्त अपराध के लिए दोषी ठहराकर अपनी शिकायतों का निवारण करने में सक्षम थीं तो सामान्य तौर पर अपीलार्थी से पश्चाताप का आचरण प्रदर्शित करने की उम्मीद की जाती थी। दुर्भाग्यवश पैरोल पर रहने के दौरान अपीलार्थी के आचरण से पता चला कि उसने असहाय पीड़ितों पर हमला करके कहीं अधिक प्रतिशोधात्मक तरीके से पीड़ितों से संपर्क किया जिसके परिणामस्वरूप एक बार वर्ष 2005 में एफआईआर दर्ज की गई और उसके बाद वर्ष 2006 में जब वह पैरोल पर था। ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी की राक्षसी मानसिकता केवल पीड़ितों पर हमला करने से कम नहीं हुई जिसने अंततः अपनी पुत्री और पत्नी के महत्वपूर्ण हिस्सों (vital parts) पर चोट पहुंचाकर उन्हें वीभत्स तरीके से खत्म करके अपने अत्यधिक अमानवीय व्यवहार का प्रदर्शन किया, वह भी उसके पूरे प्रतिशोध के साथ यह सुनिश्चित करने के लिए कि उनकी तत्काल मृत्यु कारित हो। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में वर्णित चोटों की प्रकृति स्वयं ही

बताती है कि अपीलार्थी ने किस प्रतिशोध के साथ असहाय पीड़ितों पर हमला किया। वह अपनी छोटी पुत्री (अर्थात) पीडब्लू-2 को भी बख्शने के लिए तैयार नहीं था जो हालांकि एक कमरे के अंदर खुद को बंद करके अपीलार्थी के क्रोध से बच गई जिसने उस वीभत्स तरीके को देखा जिसमें अपीलार्थी ने अपनी पत्नी और पुत्री की जान ले ली।

10. जब हम बचन सिंह (सुप्रा) मामले में संविधान पीठ के फैसले से लेकर मोहम्मद अजमल मोहम्मदामीर कसाब (सुप्रा) के मामले तक के फैसलों से निकाले गए विभिन्न सिद्धांतों को लागू करने के सवाल पर आते हैं, जैसा कि मेरे विद्वान भाई न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम ने अभिनिर्धारित किया था। उसमें उल्लिखित विभिन्न कारणों से पाया कि यह मामला अभी भी 'दुर्लभ से दुर्लभतम मामले' की श्रेणी में नहीं आता है, हालांकि इसमें कड़ी सजा की आवश्यकता है। इसलिए सजा को मौत की सजा से जीवन के अंत तक आजीवन कारावास की सजा में संशोधित करते हुए हम गोपाल विनायक गोडसे बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य- एआईआर 1961 एससी 600 जिसमें इस न्यायालय ने पैरा 5 में निम्नानुसार व्यवस्था दी में दिए गए इस न्यायालय के शुरुआती फैसले को लागू करते हैं:

> "यह नहीं कहा जा सकता कि संपूर्ण जीवन को सभी उद्देश्यों के लिए बीस वर्षों के लिए माना जाएगा; न ही संशोधित धारा जो 'जीवन के लिए परिवहन' के स्थान पर 'जीवन के

लिए कारावास' शब्द को प्रतिस्थापित करती है, ऐसी किसी भी सर्वव्यापी कल्पना को चित्रित करने में सक्षम बनाती है। आजीवन कारावास या आजीवन कारावास की सजा को प्रथम दृष्टया दोषी व्यक्ति के प्राकृतिक जीवन की शेष अवधि के लिए परिवहन या कारावास के रूप में माना जाना चाहिए।"

11. उक्त सिद्धांत का बाद में मोहम्मद मुन्ना बनाम भारत संघ और अन्य- (2005) 7 एससीसी 417 में पालन किया गया। उपरोक्त निर्णयों को लागू करते हुए हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि अपीलार्थी आजीवन कठोर कारावास की सजा पाने का हकदार है जिसका अर्थ है कि उसके जीवन के अंत तक, हालांकि धारा 432 में निर्धारित शर्तों को पूरा करने वाली उपयुक्त सरकार द्वारा दी गई छूट के अधीन है और धारा 433A दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आधारभूत जांच कर उचित आदेश के अधीन है।

अपीलें निस्तारित की गईं।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी मनीषा सिंह (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।